International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 5; May 2017; Page No. 360-362

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में प्रेम भावना

संदीप कुमार

हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

'प्रेम' शब्द एक अत्यंत व्यापक शब्द है जो इसके विविध अर्थों की व्याप्ति द्वारा विदित होता है। इसके शब्दार्थ से ही इसकी व्यापक परिधि अथवा विषाल भावना का बोध होता है। वाचस्पत्य कोशकार, अमरकोशकार तथा सुप्रसिद्ध भारतीय कोशकार आप्टे ने इस शब्द को अनेक सूक्ष्म भावनाओं का वाहक बताया है।[१] पाष्चात्य कोशकारों ने भी प्रेम की यही विषाल भावना दर्षाई है और उसे सूक्ष्मता प्रदान की है।[२] ध्यान देने की बात यह है कि पूर्व व पष्चिम के इन सभी कोशकारों ने प्रेम को स्थूल इन्द्रियों तक ही कहीं भी सीमित नहीं रखा है, प्रत्युत् उसे मन के सूक्ष्म व उदात्त स्तरों तक उठाया है।

कोशकारों के अर्थों का आधार प्रायः व्याकरणगत व्युत्पत्ति व साहित्यगत प्रयोग आदि होते हैं, अतः वे पूर्ण प्रामाणिक होते हैं। इसके अतिरिक्त कवियों, भक्तों, दार्षनिकों व अन्य साधकों के द्वारा भी अनुभव का अध्ययन आदि के बल पर शब्दों के वास्तविक अर्थों की स्थापना होती है। अतः प्रेम शब्द का मर्म भली भांति समझने के लिए कतिपय विचारसूत्रों, व्याख्याओं या परिभाशाओं का उल्लेख

यहाँ अप्रासंगिक न होगा। विचार के आधार के लिए कुछ सूत्र प्रस्तुत किये जा सकते हैं। प्रकार 'प्रेम' में चित्त की तीनों वृत्तियों का सुखद संयोग होता है। प्रेम मूलतः इच्छा होता है जो ज्ञान का निर्देषन या नियंत्रण पाकर विषिश्ट या संयत रूप ग्रहण करता है। बिना ज्ञान के इच्छा अंधी है और बिना इच्छा कि ज्ञान पंगु और क्रिया के बिना दोनों निश्क्रिय। इच्छा गति देती है, ज्ञान उसको उचित दिषा-निर्देष करता है और क्रिया दोनों के समन्वयात्मक स्वरूप-प्रेम-को अभिव्यक्ति करती है अथवा दोनों क्रिया के माध्यम से अभिव्यक्ति का मार्ग खोजते हैं। प्रेम-पथ की विरति भी कवि पंत की दृष्टि में प्रेमी को अमित शक्ति प्रदान करती है –

प्रेम-वंचित को तथा कंगाल को, है कहाँ आश्रय विरह की वहिन्न में,
भस्म होकर हृदय की दुर्बल दशा, हो गई परिणत विरति सी शक्ति में,[३]

आदर्श प्रेम के उन्नायक कवि गुप्त जी ने भी 'साकेत' में मादन-प्रेम को कांतिवान् बनाया है। प्रणय-भावना ही, पृथ्वी के कण-कण में हमारे लिये स्वर्ग का प्रकाश और संगीत भर देती है। लक्ष्मण उर्मिला को कहते हैं –

बलि तुम्हारी एक बाँकी दृष्टि पर,
मर रही है, जी रही है सृष्टि भर।
भूमि के कोटर, गुहा, गिरि, गर्त्त भी,
शुन्यता नभ की, सलिल आवर्त्त भी।
प्रेयसी, किस के सहज संसर्ग से,
दीखते हैं प्राणियों को स्वर्ग से।[४]

और ठाकुर गोपाल शरण सिंह प्रेम का माहातम्य किन सरल-सुडौल शब्दों में अंकित करते हैं :-

अखिल विश्व के प्राणाधार,
अहे प्रेम जग जीवन सार।
यथा समय यौवन मदिरा से,
मदोन्मत्त संसार हुआ,
और साथ ही यहाँ तुम्हारा
उर-उर में संचार हुआ,
विश्व सुन्दरी के शृंगार,
अहे प्रेम जग जीवन सार।[५]

इन उद्धरणों में युग-कवि की परिवर्तित व परिष्कृत मानवीय प्रेम-सम्बन्धी विचारधारा का हमें पूरा-पूरा परिचय मिलता है। प्रेम-निरूपन में प्रायः यही दृष्टि सर्वत्र परिव्याप्त है।

जिस व्यापक संदर्भ (लौकिक, दृश्य, घटनाएँ, परिस्थितियाँ आदि) में प्रेम की यह दृश्टि निर्मित होती हुई दिखाई पड़ी है उस पर विचार करते हुए हम इस तथ्य तक पहुँचते हैं कि यह प्रेम कौरा अलौकिक नहीं है; वह लौकिक में अलौकिक के दर्शन की उपज है, और यही प्राचीन और नवीन प्रेम की विभाजन रेखा कही जा सकती है। इस दृष्टि-परिवर्तन के मूल में जीवन की यथार्थता, स्थूल का नवोदित महत्त्व तथा विज्ञान की पदार्थ मूलक प्रेरणा बहुत सूक्ष्मता से काम करती हुई दिखाई पड़ रही है। प्रेम-संबंधी यह जीवन-दर्शन ही युग के प्रेम-काव्य का स्नायु-जाल है।

संयोग वर्णन – रस-निरूपण में दो पक्ष होते हैं-(१) विभाव पक्ष और भाव पक्ष। आलंबन का बाह्य रूप सौंदर्य-वर्णन, जो विभाव पक्ष के अंतर्गत होता है, आगे किया जाएगा। यहाँ भाव-पक्ष पर विचार किया जाय। भाव अगणित होते हैं। सुविधा के लिए साहित्य-शास्त्रियों ने उन्हें अनेक स्थायी-संचारी भावों के रूप में वर्गीकृत कर दिया है।

संयोग-वर्णन में व्रीड़ा, चपलता, हर्ष, गर्व आदि संचारियों का विशेष स्थान है। कवियों ने संयोग का भी सुंदर वर्णन किया है। व्रीड़ा की यह व्यंजना देखिए-

हाथ लक्ष्मण ने तुरंत बढ़ा दिये,
और बोले-''एक परिम्भण, प्रिये।''
सिमिट सी सहसा गई प्रिया की प्रिया,
एक तीक्ष्ण अपांग ही उसने दिया।[६]

अनुराग-जन्य चपलता का यह एक स्वाभाविक और मनोहर चित्र और देखिए-

ललित ग्रोवा भंग दिखला कर अहा,
उर्मिला ने लक्ष कर प्रिय को कहा-

''और भी तुमने किया कुछ है कभी,
या कि सुग्गे ही पढ़ाये हैं अभी''।[७]

मध्ययुगीन कठोर नैतिकता तथा मर्यादा की 'लक्ष्मण-रेखा' को पार कर कवि ने, युगानुरूप स्वच्छंदता बरतते हुए, पात्रों के प्रणय-संबंध में जो एक नवीन चांचल्य तथा स्फूर्ति उत्पन्न की है, यह ध्यान देने योग्य है।
'हर्ष' की व्यंजना इन पंक्तियों में कितने संयत व मार्मिक रूप से हुई है-

पुलक पक्ष्म परिगीत हुए ये,
पद-रज पौंछ पुनीत हुए ये,
रोम-रोम शुचि शीत हुये ये,
पाकर पर्वस्नान।
पधारो, भव भव के भगवान।[८]

'मद' की सुंदर व्यंजना इन पंक्तियों में देखिए-

जब उसके सौंदर्य और गुण का मैं करता था संकीतर्न,
मेरे दृग से लग जाते थे उस के अर्ध-निमीलित लोचन,
मेरा कंठहार बनती थीं उसकी गोल भुजाएँ उठ कर,
हो जाती थी प्रेम-प्रभा से उस के मुख की कांति मनोहर।[९]

भाव और अनुभाव का घनिष्टतम संबंध है। अनुभाव हृदय के स्थायी अथवा संचारी भावों का अनुभव कराते हैं। ये अनुभाव आलंबन के सौंदर्य से संबंधित हैं, अतः इनका स्थान सौंदर्य-निरूपण के अंतर्गत है। विरह की नाना अंतदर्शाओं का चित्रण इस काल के मूर्धन्य प्रबंधकार कवियों ने पर्याप्त मनोयोग के साथ किया है। निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, दैन्य, चिंता, स्मृति, औत्सुक्य, अमर्ष, विबोध, मति, उन्माद, मरण, वितर्क आदि हृदय की अत्यंत गहरी भावनाएँ हैं। विरह-दशा में ही इन भावनाओं का हृदय में संचार रहता है। जो कवि घटना तथा परिस्थिति को, उस की समग्रता में, मूल से पकड़ कर हृदयंगम करता है वही इन दशाओं का मार्मिक निरूपण कर सकता है। भारतेन्दु-काल के कवियों ने इस दृष्टि से कोई विशिष्ट प्रतिभा का परिचय नहीं दिया था। किंतु इस काल में अवश्य हमें नवीनता के दर्शन होते हैं।
गुप्त जी ने विरह-वर्णन में पर्याप्त नवीनता का समावेश किया है। 'निर्वेद' संचारी की ये उक्तियाँ कितनी मार्मिक हैं -

दीपक संग शलभ भी जला न सखि,
जीत सत्व से तम को,
क्या देखना दिखाना,
क्या करना है प्रकाश हमको ![१०]
अरी व्यर्थ है व्यंजनों की बड़ाई,
हटा थाल, तू क्यों इसे आप लाई ![११]
जाओ मेरे सिर के बाल !
आलि, कर्त्तरी ला,
मैंने क्या पाले व्याल ![१२]
अब क्या रक्खा है रोने में !
इन्दु कले, दिन काट शून्य किसी एक कोने में ![१३]

'उर्मिला' और 'यशोधरा' की इन उक्तियों में कवि हृदय की भावुकता, उसकी उद्भावना-शक्ति तथा नाटकीय कल्पना के दर्शन होते हैं।

'ग्लानि' की दशा शुद्ध व सात्विक अन्तःकरण की विशेषता है। 'साकेत' की उर्मिला 'आत्मग्लानि' की दशा में कह रही है -

अधम उर्मिले, हाय निर्दया,
पतित नाथ हैं, तू सदाशया !
नियम पालती एक मात्र तू,
सब अपात्र हैं, और पात्र तू !
मुँह दिखायगी क्या उन्हें अरि,
मर ससंशया, क्यों न तू मरी।[१४]

उर्मिला ने 'उन्माद' की स्थिति में लक्ष्मण के चरित्र के प्रति मनमाने ढंग से शंका कर ली थी। उस शंका का संतोषजनक निवारण होने पर वह 'आत्म-ग्लानि' से गड़ी जा रही है, भाव खूब अच्छा खिला है।
'हरिऔध' जी द्वारा 'शंका' की एक व्यंजना देखिये -

मधुपुरपति ने है प्यार ही से बुलाया।
पर कुशल हमें तो है न होती दिखाती।
प्रिय विरह घटाएँ घेरती आ रही है।
घहर घहर देखो हैं कलेजा कँपाती।।[१५]

विरह-विहन्ल मातृ-हृदय की कोमल व्यंजना है।
उद्धव के प्रति गोपियों की इस उक्ति में 'रत्नाकर' द्वारा 'असूया' की बड़ी ही सुन्दर व्यंजना हुई है -

'कूबरी की पीठ तैं उतारि भार भारी तुम्हें
भेज्यौ ताहि थापन हमारी छीन छाती पर।[१६]

गोपियों की इस जली-कटी में कितनी स्वाभाविकता है। ''दैन्य'' की कोमल भावना का चित्र इन शब्दों में कितना साफ उतरा है।

मेरा जी तो व्यथित बन के बावला हो रहा है।
व्यापी सारे हृदय तल में वेदनाएँ सहस्त्रों।
मैं पाती हूँ न कल दिन में, रात में ऊबती हूँ।
भीगा जाता जब सदन है वारि द्वारा दृगों के।।[१७]

'स्मृति' की मादकता विरही-हृदय को न जाने कितनी भाव-तरंगों में डुबाती-उतारती हैं। अतीत के आनंदोल्लास व सुखोपभोग के दृश्यों को याद कर-कर के प्रेमी-हृदय एकांत में न जाने कितनी सर्दायी और टकराती आहें भरते है। 'स्मृति' का एक करूण चित्र देखिए-

यह सिर से पद तक अति उज्जवल,
हिम से आच्छादित है गिरिवर।
इस की चोटी से हम दोनों,
भुज बंधन कस आलिंगन कर।
चुम्बन करते हुए परस्पर,
लुढ़का करते थे उतार पर।
उसे स्मरण कर हो जाता है,
हृदय विरह-ज्वर से अति कातर।[१८]
कैसी 'रोमांटिक' कल्पना है।

परिस्थिति की नाटकीयता के बीच 'स्मृति' का यह चित्रण वास्तव में मनोहर है।

गुप्त जी ने 'औत्सुक्य' की कितनी सुंदर व्यंजन की है–

क्यों फड़क उठे ये वाम अंग, ज्यों उड़ने के पहले विहंग।
किस शुभ घटना की रटना सी, लगा रहा है अंतरंग।
क्यों यह प्रकृति प्रसन्न हो उठी, नहीं कहीं कछु राग रंग।
उठती है अंतर में कैसी, एक मिलन जैसी उमंग।
लहराती है रोम रोम में, अहा, अमृत की सी तरंग।।[१६]

वाम अंगों के फड़कने की बात कह कर कवि ने लोक–विश्वास का अच्छा ज्ञान बताया है। रोम–रोम में अमृत की तरंग लहराने के कथन के द्वारा प्रणय की अत्यंत सात्विकता व पवित्रता प्रकट हुई है।
'अमर्ष' संचारी की सुंदर व्यंजनाएँ 'यशोधरा' में बहुत ही मार्मिकता से हुई हैं। दो एक उक्तियां देखिए–

सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात।
पर चोरी–चोरी गये, यही बड़ा व्याघात।।
सखि, वे मुझ से कह कर जाते,
कह, तो क्या मुझ को वे अपनी पथ बाधा ही पाते।[२०]

प्रणयिनी यशोधरा की पत्नी–सुलभ अधिकार–भावना को आघात लगने के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई, क्रोध के कोमल रूप 'अमर्ष' की ये भावनाएँ वस्तुतः सुंदर हैं।
अविद्या के नाश होने पर चैतन्य–लाभ होने की इस व्यंजना में 'विबोध' संचारी की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है –

लगा सोचने वह सुमना के गुण का बार बार कर चिंतन,
धिक् है, मैं पुरूषार्थ छोड़कर बन में बैठा हूँ विरही बन।
अबला एक युद्ध में जाकर निज कुल, जाति, देश को गौरव,
रखने में तत्पर है, पर मैं हाय, हो रहा हूँ जीवित शव।[२१]

'साकेत' की 'उर्मिला' व्यथा से थक चुकी है। सुमति के उदय होने पर उसका मन, विचार तथा तर्क से संशय–रहित हो संतोष–लाभ कर लेता है। विरही इस वृत्ति से किसी प्रकार जीवन धारण किये रहता है। 'मति' का यह उदाहरण लीजिए–

दिन जो मुझको देंगे आलि, उसे मैं अवश्य ही लूँगी,
सुख भोगे हैं मैंने, दुःख भला क्यों न भोगूंगी।[२२]

'उन्माद' की दशा संभवतः विरह से सबसे गंभीर तथा मर्मस्पर्शी दशा है। उसके वश में विरही संज्ञा–शून्य–सा होकर प्रमादपूर्ण आचरण करने लगता है।

अब भी समक्ष वह नाथ खड़े,
बढ़ किन्तु रिक्त यह हाथ पड़े।
न वियोग है न यह योग सखी,
कह, कौन भाग्य भय भोग, सखी।[२३]

इस प्रकार के पचासों उदाहरण दिये जा सकते हैं। कवियों ने प्रणय–भावना के क्षेत्र में विरह के समय हृदय में उठने वाली नाना भाव–तरंगों का पर्याप्त सुंदर तथा मार्मिक चित्रण किया है।

संदर्भ

१. 'सौहार्द स्नेहे हर्शे' (वाचस्पत्य कोश, पृ० ४५४०)।
प्रेमा ना प्रियता हार्वे प्रेम स्नेहोऽथ दोहदम्। (अमरकोश, प्रथमं काण्डम्)। "Love, affection, favour, kindness, kind or tender regard, sport, pastime, joy, delight, gladness."
आप्टे (Sanskrit-English Dictionary – 1922, page. 380)
२. Love, affection, kindness, tender regard, favour, predilection, fondness. –Sir Monier – Williams : Sanskrit – English Dictionary, second edition (Oxford, 1899), page, 711 feeling of strong personal attachment induced by that which delights or commands admiration, by sympathetic understanding, or by ties of kinship or ardent affection.
Manifestation of desire for, and earnest effort to promote, the welfare of a person, esp. as seen in God's solicitude for men and men's due gratitude and reverence to God.
Strong liking, fondness, goodwill, the object of ideal regard, as love of learning, love of freedom, love of country, love of money, tender of passionate affection for one of the opposite sex, as to marry without love, also, an instance of love affair.
Sexual passion or, rare, its gratification.
The object of affection, often employed in endearing addresses;
Cupid, or Eros, as the God of love, etc."
Webster's New International Dictionary of English Language (page, 1279).
३. सुमित्रानन्दन पंत : ग्रन्थि (१९२९), पृ० ३९
४. 'साकेत', प्रथम सर्ग।
५. ठाकुर गोपालशरण सिंह : 'आधुनिक कवि' (हि० सा० सम्मेलन संग्रह), पृ० २६
६. सकेत, प्रथम सर्ग, पृ० २४
७. सकेत, प्रथम सर्ग, पृ० २६
८. यशोधरा, पृ० २१०
९. वही---पृ० ६२
१०. 'साकेत', नवम सर्ग।
११. वही
१२. 'यशोधरा', पृ० ३८
१३. वही, पृ० ९१
१४. सकेत, नवम सर्ग।
१५. 'प्रियप्रवास', चतुर्थ सर्ग।
१६. 'उद्धवशतक', छंद ७३
१७. 'प्रियप्रवास', सर्ग। १५
१८. स्वप्न, सर्ग ४।
१९. यशोधरा, पृ० १५९।
२०. यशोधरा, पृ० २१।
२१. स्वप्न (१९६०), पृ० ६९
२२. साकेत, सर्ग ९
२३. वही, सर्ग ९